रूपकों की परम्परा एवं नाट्यशास्त्र

डॉ0 सच्चिदानन्द उपाध्याय*

भारतीय परम्परा नाट्य की उत्पत्ति दैवी मानती है। भरतनाट्य शास्त्र के प्रथम अध्याय में नाट्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कथानक विवरण उपलब्ध होता है।

सतयुग के समाप्त होने पर और त्रेता युग के प्रारम्भ हो जाने पर यह संसार सुख में दुख तथा आनन्द में शोक मिश्रित हो जाने से तथा विविध जातियों से भर जाने के कारण व्याकुल हो गया। तब इन्द्रियादि प्रमुख देवताओं ने ब्रह्मा से एक ऐसा मनोरंजनात्मक तथा श्रव्य से दृश्य पंचम वेद बनाने की प्रार्थना की। जिसे वर्ण सुन तथा देख सके। क्योंकि ऋगुवेदादि वेदों को तो शुद्रादि सुन नहीं सकते थे। देवों की प्रार्थना पर ब्रह्मा ने भरत मुनि को इस नाट्य के प्रचार का भार दिया। भरत मुनि ने अपने सौ पुत्रों सहित इस नाट्य का श्रवण, धारण, तथा ज्ञान प्रवाह किया और ब्रह्मा की सभा में प्रथम प्रयोग दिखाया। जिसमें केवल भारती आरभटी एवं सात्वती वृत्तियाँ थी। आचार्य बृहस्पति ने नाट्य में केशिकी वृत्ति भी जोड़ने की प्रेरणा दी। तब ब्रह्मा द्वारा प्रदत्त अप्सराओं को भी अभिनय शिक्षा देकर भरत ने पुनः इन्द्रध्वजोत्सव के अवसर पर समस्त सभा सम्मुख इन्द्र विजय से सम्बद्ध नाट्य प्रस्तुत किया। देवता तो इससे बहुत प्रसन्न हुए किन्तु नाट्य में अपना ऐसा अपकर्स देखकर दानवों क्षुब्ध होकर नाट्य में विघ्न डाला। इन्द्र अपने ध्वज से समस्त विघ्नों को नष्ट कर दिया किन्तु प्रत्येक नाट्य प्रयोग के समय विघ्नों की आशंका से ब्रह्मा ने भरत की प्रार्थना पर विश्वकर्मा को प्रेक्षागृह बनाने का आदेश दिया और क्षुब्ध दैत्यों, दानवों को नाट्य का विविध महत्व समझाया।

–सर्वप्रथम जिन रूपकों का अभिनय किया गया वे ''त्रिपुरादाह नामक डिम''–समुद्रमन्थन नामक समवकार थे। परम्परा से प्राप्त नाट्योत्पत्ति के इस सिद्धान्त को सर्वथा अग्रास नहीं किया जा सकता। इस कथा को भले ही हम स्वीकार न करें किन्तु भारतीय नाट्योत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक महत्वपूर्ण सूत्र उपलब्ध हो जाते हैं।

1. ब्रह्मा नामक अथवा उपाधिधारी व्यक्ति ने मनोरंजन के साधन रूप में नाट्य का आविष्कार किया एवं तदर्थ विभिन्न स्वरूपात्मक नाट्यशास्त्र रचा।
2. नाट्य की रचना में चारो वेद से विभिन्न पाठ्य, गीत, रस, अभिनय, आदि अंग ग्रहण किये गये थे।

शोधार्थी पी0एच0–डी0 संस्कृत साहित्य प्रवक्ता–ठा0 मातिवर सिंह पी0जी0 कॉलेज, जमालापुर, जौनपुर (उ0प्र0)

3. प्राचीनतम नाट्यों का स्वरूप धार्मिक था और धार्मिक उत्सवों, यात्राओं तथा पर्वों पर उन नाट्यों का अभिनय प्रस्तुत किया जाता था।
4. नाट्य में मूलतया भले ही पुरूष नट हो रहे हों किन्तु अत्यन्त शीघ्र ही स्त्री और पुरूष दोनों ही अपनी भूमिका नाट्य में अभिनीत करने लगे थे।

समस्त वेदों के जिस सार को लेकर भगवान ब्रह्मा ने नाट्य नामक (पंचम) वेद की रचना की, जिस वेद से सम्बद्ध अभिनय प्रयोग को हाथ तथा पाँव से समायोग एवं अंग विक्षेप के द्वारा भरतमुनि ने (व्यवहारिक रूप में) पल्लवित किया, जिसमें भगवान शिव ने ताण्डव (उद्धत) नृत्य का तथा भगवती पार्वती ने लास्य (कोमल) नृत्य का समावेश किया, उस नाट्य वेद के सम्पूर्ण लक्षण को कौन कर सकता है? यद्यपि देवताओं और महापुरूषों के द्वारा निबद्ध इस नाट्यशास्त्र की सिद्धान्त सरणि का विवेचन अस्मादृश लौकिक प्राणियों के लिये असम्भव है फिर भी उन नाट्यों के लक्षणों को तथा नाटक के परम्पराओं को लेकर अनेक वर्णन किया जा सकता है।

इस आलेख का विषय रूपकों की परम्परा, रूपकों के पर्यालोचन का लक्ष्य केवल व्युत्पत्ति या लौकिक ज्ञान न होकर रसरूप अलौकिक आस्वाद का अनुभव है।

रूपक की विशेषतायें :–रूपक (अलौकिक) आनन्द से प्रवण रहते हैं। इनका लक्ष्य (फल) सहृदय की अलौकिक आनन्दरूप का आस्वाद कराना है। कोई अल्पबुद्धि विद्वान इन रूपकों का फल केवल इतना ही मानता है कि इनसे व्युत्पत्ति होती है, ठीक वैसे ही इतिहास, पुराण आदि के पठन से लौकिक ज्ञान प्राप्त होता है। तत्रकेचित्–

धर्मार्थकाम मोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।
करोति कीर्ति प्रीति च साधु काव्य निशेषणम्।। दश रूपक–6/1

विद्वानों का कहना है कि सत्काव्य के सेवन करने से धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष में एवं कलाओं में विदग्धता प्राप्त होती है तथा अध्येता में कीर्ति तथा प्रीति का सन्निवेश होता है।

रूपक का लक्षण–''नाट्य'' अवस्थानुकृति नाट्यं :–अवस्था के अनुकरण को नाट्य कहते हैं। जहाँ काव्य से निबद्ध या वर्णित धीरोदात्त धीरोद्धत, धीर पशान्त प्रकृति नायकों का आंगिंक वाचिक आहार्य तथा सात्विक इन चार ढंग के अभिनयों के द्वारा अवस्थानुकरण किया जाता है वही नाट्य है। अवस्थानुकरण से यह तात्पर्य है कि चाल–ढाल, वेष–भूषा, आलाप–प्रलाप आदि के द्वारा पात्रों की प्रत्येक अवस्था का अनुकरण इस ढंग से किया जाय कि नटों में पात्रों की तादात्म्यपत्ति हो जाय।'' रूपम दृश्यतयोच्यते।

यही नाट्य रूपक भी कहलाता है। नाट्य केवल श्रव्य काव्य न होकर रंगमंच के ऊपर अभिनीत भी होता है। अतः दृश्य, देखा जा सकता है। ''**रूपकं तत्समारोपात्**''–क्योंकि इसमें आरोप पाया जाता है।

नाट्यशास्त्र साहित्य :—संस्कृत साहित्य एक अन्यन्त महत्वपूर्ण तथा कमनीय अंग है ''नाट्य''। सम्पूर्ण विश्व में संस्कृत साहित्य की महत्ता एवं रसमयता को उजागर करने वाला यही नाट्य साहित्य है क्योंकि अभिज्ञान शाकुन्तलम् नाटक के मानवीय संस्पर्श नाट्य कौशल तथा रमणीय रस पेशलता ने ही विश्व के विभिन्न विधानों को चमत्कृत करके उन्हें संस्कृत साहित्य के अनुशीलन की ओर हठात् प्रेरित किया।

नाट्यशास्त्र के साथ–साथ दृश्य काव्य है इसमें मुख्यतः दृश्यत्व को ही है। अन्य सभी इन्द्रियों की अपेक्षा चक्षुरिन्द्रिय से ग्रहण किया गया प्रभाव अधिक स्थायी होता है। यह सर्वविदित मनोवैज्ञानिक तथ्य है। यह नाट्य साहित्य नेत्र से देखा जाकर सीधा हृदय को स्पर्श करता हैं वेशभूषा, आंगिक संचालन, रंगमंच सज्जा तथा भाव प्रदर्शन आदि समवेत सुन्दर अभिनय से प्रस्तुत किया जाता हुआ तत्कालिक पात्र नट में जीवन्त होकर दर्शक को तन्मय कर देता है और दर्शक अनायास ही रस समुद्र में निमग्न हो जाता है। यही कारण है कि विद्वान एवं साधारण वृद्धि सभी जन श्रव्य काव्य की अपेक्षा नाट्य की ओर अधिक आकर्षित हो जाते हैं। **नाटकान्तं कवित्वम्**—ऐसा कहा गया है। **काव्येषु नाटकं रम्यम्**—काव्यों में नाटक अति रमणीय है।

रूपक का उद्देश्य :—रूपक का उद्देश्य अत्यन्त महत्वशाली है। भरत ने नाट्य को सार्ववणिक वेद कहा है क्योंकि अन्य वेद केवल दिजमाल के लिये उपयोगी होते हैं परन्तु नाट्य का उपयोग प्रत्येक वर्ण के लिये होता है। प्रत्येक व्यक्ति इस आनन्द का अधिकारी माना गया है। नाटक का प्रभाव किसी एक प्रकार की अभिरूचि वाले लोगों के ऊपर नहीं होता परन्तु वह सार्वजनिक मनोरंजन के लिये होने के कारण समाज के प्रत्येक व्यक्ति के लिये ग्राह्य तथा उपादेय होता है। नाटक का विषय ही शामिल न होता प्रत्युत तीनों लोक में भावों का अनुकीर्तन इसमें रहता है।

यह शक्ति दोनों हृदय मे शक्ति का संचार कराता है, शूरवीरों के हृदय में उत्साह बढ़ाता है, अज्ञानियों को ज्ञान प्रदान कराता है और विद्वानों की विद्वता का उत्कर्ष करता है। ''रूपक'' है लोकवृत का अनुकरण।

रूपक के भेद :—**नाटकं सप्रकरणं भाणः प्रहसनं डिमः।**
व्यायोग समवकरौ वीरयङकेहामृगा इति।।

रूपक के दस भेद होते हैं—1. नाटक 2. प्रकरण 3. भाण 4. प्रहसन 5. डिम 6. व्यायोग 7. समवकार 8. वीथी 9. अंक 10. ईहामृग।

इनके सिवाय 18 प्रकार के उपरूपक का नाम तथा लक्षण नाट्यशास्त्र के ग्रन्थों में मिलते हैं। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि संस्कृत का रूपक साहित्य बड़ा ही विशाल व्यापक तथा नाना रूपात्मक है।

नाट्यशास्त्र के प्रमुख तत्व :—

कला, वस्तु या इतिवृत्त—रूपकों का पहला भेदक वस्तु है। इसे ही कथा, इतिवृत्त, कथावस्तु आदि नाम से भी पुकारते हैं। वस्तु दो प्रकार की होती है—आधाकारिक, प्रासंगिक।

1— अधिकारिक कथावस्तु मूल वस्तु तथा प्रासंगिक कथावस्तु गौण होती है।
2— प्रासंगिक वस्तु के भी दो भेद किये गये हैं—पताका तथा पकरी।

जो कथा काव्य में बराबर चलती है उसे ''पताका कहते हैं। जो कथा काव्य या रूपक में कुछ ही काल तक चलकर रूक जाती है वह ''पकरी'' कहा जाता है। इतिवृत्ति मूल की दृष्टि से तीन तरह का होता है—1. प्रख्यात, 2. उत्पाद्य, 3. मिश्र। समस्त इतिवृत्त को पाँच अर्थ प्रवृत्तियों, पाँच अवस्थाओं तथा पाँच सन्धियों में विभक्त किया जाता है।

अर्थ प्रकृतियाँ— 1. बीज, बिन्दु पताका, प्रकरी, कार्य,
अवस्थायें—1. आरम्भ, यत्न, प्राम्त्याशा, नियताप्ति, फलागम,
सन्धियां—मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श, उपसंहति

अर्थपकृतयः पंच पंचावस्थासमन्विताः।
यथासंख्येन जायन्ते मुखाधाः पंचसन्धयः।।

नाटक के अन्तर्गत आठ प्रकार के सात्विक गुणों की स्थिति होना आवश्यक है। ये गुण हैं—शोभा, विलास, माधुर्य, गांभीर्य, रूथैर्य, तेज, लालित्य, तथा औदार्य।

उपसंहार—दृश्य काव्य या रूपक रंगमंच पर अभिनीत किये जाने की वस्तु है। यही कारण है कि रंगमंच के साथ उसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। भरत के नाट्यशास्त्र में आज से लगभग दो हजार वर्ष पहले भारती पर रंगमंच की एक झाँकी देखी जा सकती है। नाट्यशास्त्र में नाट्यग्रहों का विशद् वर्णन किया गया है। भारतीय रंगमंच की अभिवृद्धि के साथ ही साथ संस्कृत के नाटकों का विकास हुआ। कालिदास, शूद्रक, हर्ष भवभूति आदि के नाटक रंगमंच पर मजे से खेले जा सकते हैं। धीरे–धीरे भारतीय रंगमंच का ह्रास होता गया, किन्हीं कारणों से इन्हें राजाश्रय या लोकाश्रय न मिल जाय। फलतः नाटकों में सिद्धान्त और प्रक्रिया की दृष्टि से समन्वय न हो पाया। इन नाटकों में धीरे–धीरे श्रव्य काव्यत्व बढ़ता गया। फिर भी आज भी हम इन्हें रामलीला, कृष्णलीला के रूप में देखते हैं। यही कारण है कि अनेक ग्रन्थों के माध्यम से इनका महत्व कम नहीं किया जा सकता। और इनके उपदीयता कभी कम नहीं हो सकती। धर्म की दृष्टि से इनका महत्व बहुत है।

शम्भोः समाधि वः पातुः नीलकण्ठस्य कण्ठः तथा जयति वृषभकेतुः।
भगवान शिव हम सब की रक्षा करें।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची—

1.	दशरूपकम्	आचार्य धनन्जय
2.	नाट्यसाहित्य	आचार्य रामचन्द्र
3.	संस्कृत साहित्य का इतिहास	डॉ0 कपिल देव शास्त्री
4.	साहित्य दर्पण	आचार्य विश्वनाथ
5.	नाट्यशास्त्र	आचार्य भरतमुनि
6.	नागानन्द नाटक	हर्षवर्धन
7.	काव्य प्रकाश	आचार्य मम्मट